International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017, pp. 206~211
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

प्रेमचंद का भारतीय समाज पर प्रभाव एवं प्रासंगिता

Karuna Pati Maithani[1], Dr. Govind Dwivedi[2]

Department of Hindi

[1,2]OPJS University, Churu (Rajasthan) - India

सार

हिन्दी साहित्य के युगंतकारी लेखक मुंशी प्रेमचंद का जन्म बनारस से आजमगढ़ की ओर जाने वाली सड़क पर हर से करीब चार माल की दूरी पर स्थित 'लमही नामक गाँव में संवत् 1937 अर्थात् जुलाई सन् 1880 शनिवास को श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में हुआ था। प्रेमचंद का जन्मपत्री का नाम 'धनपतराय एव चाचा ताऊ का मुँहबोला नाम 'नवाबरायष था और इसी नाम से प्रेमचंद ने अपने लेखकीय जीवन का श्री गणे किया तथा मित्र द्वारा दिया हुआ नाम 'बम्बूकष था।मध्यमवर्गीय परिवार के प्रेमचंद जी के पिता ने पोस्टखाते की नौकरी स्वीकार ली थी। कायस्थ परिवार के व्यक्ति का नौकरी करना सम्मानदर्षक थाए ऐसी सरल सामान्य धारणा प्रचलित थी।उसी के अनुसार प्रेमचंद के पिता का जीवन पोस्ट खाते से ही संबंधित था। उनके दूसरे भाई भी पोस्ट ऑफिस में ही काम कर रहे थे। अजायबलाल सामान्य पद पर कार्यरत थे। इसलिये आर्थिक आय भी मर्यादित थी। अलग अलग जगह तबादला होने से उन जग्हों का अनुभव उन्हें प्राप्त हुआ।

भूमिका

कहा जाता है कि प्रेमचन्द हंसोड़ प्रकृति के मालिक थे। विषमताओं भरे जीवन में हंसोड़ होना एक बहादुर का काम है। इससे इस बात को भी समझा जा सकता है कि वह अपूर्व जीवनी शक्ति का द्योतक थे। सरलताए सौजन्यता और उदारता के वह मूर्ति थे।

माँ सुग्गी से ज्यादा प्रेमचंद को प्यार करती थी इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि एक तो वे लड़के थे ऊपर से सबसे छोटे भी थे और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उनकी दो संतानें पहले ही मर चुकी थीं। इसीलिए माँ को हरदम यही डर लग रहता था कि कोई उसके बेटे को नजर लग देगा कुछ जादू टोना कर देगा। हरदम झाड़ फूँक करवाती रहती है राईनोन (नमकद्ध से नजर उतरवाती रहती और डिठोना (बच्चों के लालट पर लगया जाने वाला काजल का टीका तो नवाब को पाँच छः साल की उम्र तक लगया जाता रहा। माँ का बस चलता तो वह कभी बेटों को अपने आँचल से अलग न होने देती।

प्रेमचंद इस बात के पक्षधर नहीं कभगवान के भरोसे सभी कुछ छोड़ दिया जाए। प्रायः ग्रामीण पात्र अपने जीवन के सभी पक्षों को भगवान के आधार पर ही निर्णीत मानते हैं। उदाहरणार्थ गोबर कहता है कि भगवान ने सबको बराबर बनाया है।

प्रेमचंद मानव जीवन में प्रमुख रूप से मानव मानवतावाद के पक्षधर थे। जब तक इस भूमि पर मानवतावाद नहीं रहेगा, जब तक वसुधंरा के जहर को नहीं मिटाया जा सकता, व्यवस्था दोष

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017, pp. 206~211
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

को समाप्त नहीं किया जा सकता।प्रेमचंद की विचारधारा थी कि चाहे कोई कितना ही धनवान हो उसके पास सुख साधन चाहे कितना ही हो, उसको मानवता के लक्ष्य का प्राप्त करना आवश्यक है। तभी वे अपने जीवन को सफल, सार्थक व महिमापूर्ण मान सकते हैं। रायसाहब के बार–बार लंबे संवाद इस बात के साक्षी है कि तथाकथित बड़े लोग भी मानवीयता को महत्व देते हैं। प्रेमचंद भारत के ऐसे भविष्य की कामना करते थे जहां सभी स्वयं को पहचाने। मानव प्रेम स्वयं जाग्रत हो जाए।

साहित्यिक रुचि

गरीबी अभाव शोषण तथा उत्पीड़न जैसी जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी प्रेमचन्द के साहित्य की ओर उनके झुकाव को रोक न सकी। प्रेमचन्द जब मिडिल में थे तभी से आपने उपन्यास पढ़ना आरंभ कर दिया था। आपको बचपन से ही उर्दू आती थी। आप पर नॉवल और उर्दू उपन्यास का ऐसा उन्माद छाया कि आप बुकसेलर की दुकान पर बैठकर ही सब नॉवल पढ़ गए। आपने दो तीन साल के अन्दर ही सैकड़ों नॉवेलों को पढ़ डाला।

कर्मभूमि में भारतीय जीवन का विश्लेषण

प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना सन् १९३०–३२ के राजनीतिक उथल–पुथल के समय की थी। इस उथल–पुथल के काल में भारतीय जनता राष्ट्रीय कांग्रेस के मार्ग–निर्देश पर ब्रिटिश सरकार से स्वराज्य के लिए संघर्ष कर रही थी। ग्रिटिश सरकार यह कहती तो आयी थी कि इस देश का शासन बह तभी तक अपने हाथ में रखे हुए है जण तक भारतीय स्वशासन के लिए योग्य नहीं हो जाते लेकिन सच्ची बात तो यह थी कि वह कभी नहीं मानना चाहती थी कि भारतीयों को स्वराज्य–प्राप्ति के लिए अपेक्षित योग्यता हो गयी है। इस देश में जिस भेद नीति के भरोसे उनका शासन चलता जा रहा था उसने हिन्दुओं और मुसलमानों को तो परस्पर पृथक् कर ही रखा था या उससे भी आगे पढ़कर सरकार ने अछूतों का सवाल खड़ा कर उन्हें हिन्दू धर्म से भिन्न मानना शुरु किया। प्रेमचन्दजी ने मुख्यतः इसमें राजनीतिक समस्याओं को ही उठाया है। देश की तत्कालीन परिस्थिति से प्रभावित लेखक ने राजनीतिक आन्दोलनों के अतिरिक्त अछूतोद्धार, जमींदार–किसान संघर्ष, सूदखोरी आदि विपयों का भी उल्लेख किया है। प्रेमचन्दजी ने 'कर्मभूमि' उपन्यास पाँच भागों में विभक्त किया है। पहले और तीसरे भाग में नगरीय जीवन का बर्णन है और दूसरे और चौथे भाग में ग्रामीण जीवन और पाँचवे भाग में दोनों की संस्कृति पाई जाती है। प्रेमचन्द के इस उपन्यास में दो कथाएँ पाई जाती हैं। ग्रामीण और शहरी। "शहर में एक क्रान्ति हो रही है, जिसका नेतृत्व डॉ.शान्तिकुमार तथा सुखदा आदि करते हैं। गाँवों के आन्दोलन का पथ–ग्रदर्शन सुधारवादी अमरकान्त और क्रान्तिकारी आत्मानन्द के द्वारा होता है। एक ही उपन्यास में चलने वाली दो भिन्न–भिन्न स्थलों की घटनाएँ अंत में एक ही उद्देश्य पर आ कर मिल जाती हैं, नगर की क्रान्ति का राजनीति से और ग्राम–आन्दोलन का सामाजिक विपमता से अधिक सम्वन्ध है। कर्मभूमि' में प्रेमचन्दजी ने नगरीय जीबन का इस प्रकार वर्णन किया है जो निम्नलिखित रुप से हुआ है।

नगरीय जीवन की समस्याएँ :

(१) शिक्षा की समस्या :

शिक्षा से समाज की प्रथा–परम्पराओं, रीति–रिवाजों तथा व्यवस्था–विधानों की अच्छाइयों या बुराइयों के सम्यन्ध में स्वतन्त्र रुप से

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017, pp. 206~211
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

चिन्तन–मनन किया और उनसे सही मूल्यांकन की शक्ति–सामर्थ्य पैदा होती है। किसी पूर्वग्रह और पक्षपात के मिना स्वतन्त्र विचार की शक्ति जा में उत्पन्न हो जाने से, प्राचीन ग्रथा–परम्पराओं में परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुसार यथायोग्य सुधार अथवा जड़मूल से क्रान्ति कर सकना भी सहज हो जाता। प्रेमचन्द शिक्षा की इस अमिट शक्ति को अच्छी तरह से जानते थे। वे जानते थे कि हिन्दू–समाज की शताधिक समस्याओं समाधान और इलाज अच्छी शिक्षा के व्यापक रासार से ही हो सकते हैं। नगर में व्याप्त कुप्रथाओं, कुरीतियों आदि का एक ही इलाज शिक्षा ही है। तो शिक्षा की समस्या के मूल कारण प्रेमचंदजी ने बताये हैं जो निम्नलिखित हैं:

(क) शिक्षा का अभाव

अंग्रेजों को इस देश की शिक्षा–पद्धति की अच्छाइयों–गुराइयों से अथवा उसके प्रसारविस्तार से कुछ लेना–देना न था। उन्हें तो अपने राज्य–संचालन के लिए दफतरों, अदालतों और शिक्षा–स्वास्थ्य आदि विभागों के लिए अंग्रेजी पढ़े–लिखे, बफादार, पैसों के भक्त, थोड़े–से क्लर्को तथा कर्मचारियों की जरुरत थी। लॉर्ड मैकाले द्वारा शुरु की हुई शिक्षा–पद्धति से उन्हें राज्य के वफादार क्लर्क पर्याप्त संख्या में मिल जाते थे। सरकारी नौकरी मिलने के प्रलोभन से धीरेधीरे इतने क्लर्क और कर्मचारी इन स्कूलों तथा कॉलेजों से पढ़कर बाहर निकलने लगे कि उन सणको नौकरी दे सकना भी सम्भव न रहा । इसीलिए ऐसे शिक्षित बेकारों की संख्या बप–बर्ष गढ़ने लगी।

(ख) चरित्र–निर्माण

प्रेमचन्द भी चरित्र–निर्माण को शिक्षा का मुख्य ध्येय मानते हैं। 'कर्मभूमि' में देश में प्रचलित शिक्षा–प्रणाली के दोप का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं– "बह किराये की तालीम हमारे केरेक्टर की तणाही करती है।'' चरित्र का विनाश ही सण से खड़ी हानि है, क्योंकि मनुष्य की अनमोल पूँजी उसका चरित्र ही है। चरित्र–निर्माण को शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए प्रेमचन्दजी कहते हैं– "राष्ट्र अण युनिवर्सिटीयों से ऊँचे आदर्श की आशा रखता है, जहाँ पढ़ाई अपनी सीमा के अन्दर रहे, और छात्रों का चरित्र–निर्माण ध्येय बने। मानव हृदय में काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ, ईर्ष्या, अहंकार आदि कुवासनाएँ वा पाशविक वृत्तियाँ भी हैं, और दया, ममता, स्नेहवात्सल्य, आदर–सम्मान आदि दैवीय वृत्तियाँ भी है। इस प्रकार चरित्र–निर्माण करने के लिए शिक्षा जरुरी है।

(ग) शिक्षितों का आचार–व्यवहार

अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षक, अध्यापक और प्रोफेसर स्वयं स्वार्थपरायण हों तो फिर देश के या नगरीय जीवन के युवकों में सेवा–सहानुभूति की भावनाओं का संचार कैसे हो सकता है। प्रेमचन्दजी कहते हैं– "जण वह (अमरकांत) अपने अध्यापकों को फैशन की गुलामी करते, स्वार्थ के लिए नाक रगड़ते, कम–से–कम काम करके अधिक–से–अधिक लाभ के लिए हाथ पसारते देखता, तो उसे घोर मानसिक वेदना होती थीय और इन्हीं महानुभावों के हाथों में राष्ट्र की बागडोर है । इन्हें इसकी परवाह नहीं कि भारत के एक साधारण आदमी को साल–भर में पचास रुपये से ज्यादा नहीं मिलते। हमारे अध्यापकों को पचास रुपये रोज चाहिये।

(घ) सुधार की दिशा

प्रेमचन्दजी ने जला कर्मभूमि' लिखा तय की तत्कालीन परिस्थिति देखी थी कि नगर में या शहर में शिक्षा की जरुरत है । शिक्षा से ही हम सग परिवर्तन कर सकते हैं। प्रेमचन्द ने गड़े प्रयत्न, पुरुषार्थ और तपस्या से (हाईस्कूल पहुँचने

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017, pp. 206~211
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

के लिए १०–१२ मील रोज पैदल चलकर) शिक्षा प्राप्त की थी। जीवन का ऊँचा–नीचा उन्होंने खूण देखा था। शिक्षा के सम्पन्ध में उन्होंने भाँति–भाँति के अनुभव प्राप्त किये थेय स्वतंत्र ढंग से चिन्तन–मनन भी खूण किया था।

प्रेमचंद एवं भारतीय समाज

- **जाति निरपेक्ष**

प्रेमचन्द के समय में हिन्दू समाज, समाज के स्थान पर अनेक जातियों व उपजातियों में बँटा था। एक जाति के लोग अपने को उच्च और दूसरी जाति के लोगों को नीच समझते थे। यह छुआछूत और ऊँच–नीच का भेदभाव समाज की एकता और संगठन में अनेक प्रकार से बाधक थे। 'गबन' में रमानाथ (जाति से कायस्थ होते हुये भी) अपने आपको ब्राह्मण बताकर देवीदीन खटिक (फल–तरकारी आदि बेचने वाली एक हिन्दू जाति) के घर मेहमान बनकर बहुत दिनों तक रहा था। वह जग्गो के हाथ का खाना नहीं खाता अपने आप स्वयं बनाता था, लेकिन एक दृश्य ने उसके जाति–भेदभाव को भावमय बना दिया।

- **धर्म निरपेक्ष**

प्रेमचन्द ने महसूस किया कि धर्म के क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने की परम आवश्यकता है, क्योंकि जब तक धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त साम्प्रदायिकता, असमानता व अन्धविश्वास दूर नहीं होगा तब तक हमारा उद्धार नहीं हो सकेगा। इस साम्प्रदायिकता को, इस असमानता को तथा इस अंधविश्वास को जड़ से मिटाने के लिये ही प्रेमचन्द ने 'गोदान' में मालती के माध्यम से कहा है, ''हममें आज से कोई ब्राह्मण नहीं है, कोई शूद्र नहीं है, कोई हिन्दू नहीं है, कोई मुसलमान नहीं है, कोई ऊँच नहीं है, कोई नीच नहीं है। हम सब एक ही माता के बालक, एक ही गोद में खेलने वाले, एक ही थाली के खाने वाले भाई हैं।''

- **नारी का सम्मान**

प्रेमचन्द स्त्रियों के अधिकारों के प्रति जागरूक थे। उनकी सहज संवेदनशील प्रकृति ने सामाजिक अत्याचारों के नागपाश में आबद्ध नारी को मुक्त करने के लिये उपन्यास को माध्यम चुना। अपनी सशक्त लेखनी से उन्होंने नारी जीवन के जो चित्र खींचे हैं, वे तत्कालीन समाज में घर–घर की कहानी थे। अनुभूति की तीव्रता ने इन चित्रों को वह मार्मिकता प्रदान की थी कि वह पाठक के मन को झकझोर सके, उसके विवेक को जागृत कर सके।

यथार्थ चित्रण

प्रेमचन्द के सम्बन्ध में विद्वानों मत भी इस प्रकार मिलता है– ''प्रेमचन्द यथार्थ को पूरा उभार देने वाला सबल चित्र तो बनाते हैं, लेकिन उसमें आदर्श के सम्मिश्रण से एक जादू–सा कर देते हैं।'' और ''वह आदर्श वैसे तो समाज में नहीं मिलता, लेकिन कहानियों में आकर उसके द्वारा यथार्थ, सरस, सुन्दर और उदात्त अवश्य हो जाता है। वास्तव में प्रेमचन्द की कहानियाँ यथार्थ और आदर्श का अन्तर्विरोध ही व्यक्त करती हैं।''

भारतीय समाज को शिक्षा :

हिन्दी के आधुनिक कथात्मक साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान 'प्रारम्भिक रहा है। इस दिशा में प्रेमचन्द से पूर्व जो छिटपुट प्रयत्न हुए उनका मात्र प्रयत्नों के अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं रहा। कथात्मक साहित्य के नाम पर प्रेमचन्द के पूर्व जो कुछ लिखा गया वह या तो कल्पना प्रसूत अंतर्मुखी प्रवृतियों का लेखा–जोखा रहा है अथवा समाज सेवा के कृत्रिम अभिनिवेश से प्रेरित

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 1, January- 2017, pp. 206~211
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 | Thomson Reuters Researcher ID: L-5236-2015

उपदेशात्मक बखान रहा है। प्रेमचन्द की संवेदनशीलता मनुष्य की बर्हिमुखी प्रवृतियों का संघर्ष चित्रित करती रही है। स्वभावतः इसका प्रमुख केन्द्र व्यष्टि रहा और इसलिए इसकी अनुभूति का क्षेत्र कल्पना प्रसूत आदर्श स्वर्गलोक न रहकर यथार्थाधिष्ठित मानव समाज ही रहा है। प्रेमचन्द के अनुसार साहित्य का प्रयोजन मनोरंजक जरूर है, पर यह मनोरंजन वह है, जिसमें हमारी कोमल और पवित्र भावनाओं को प्रोत्साहन मिले – हममें सत्य, निस्वार्थ सेवा, न्याय आदि देवत्व के जो अंश है, वे जागृत हों।

उपसंहार

प्रेमचन्द की प्रासंगिकता साहित्यिक जगत में इसलिए है कि देश में किसान–मजदूरों की हालत बदतर होती जा रही है, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, स्त्री एवं दलितों पर अत्याचार और अनैतिकता जैसी राष्ट्रीय समस्याएं विकराल रूप धर रही हैं, का हवाला देते हुए अधिकतर विद्वानों ने स्वीकार किया है कि केवल समस्याओं या समकालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में प्रेमचन्द के साहित्य का मूल्यांकन करना उनको या उनकी कृतियों को कमतर आंकना है क्यों कि उनकी विचारधारा और उद्देश्य इससे कहीं अधिक गहरे मायने रखते हैं। पुरूषोत्तम अग्रवाल के शब्दों में–''कोई भी लेखक केवल इसलिए प्रासंगिक नहीं होता कि उसके साथ हम अपनी आज की समस्याओं के प्रसंग में संवाद कर सकते हैं। कोई भी लेखक प्रासंगिक इसलिए होता है कि वो आज की समस्याओं के सन्दर्भ में या कल की समस्याओं के सन्दर्भ में या हमारे सपनों के आदर्श समाज में भी हमें यह अवसर देता है बल्कि हमें निमंत्रण देता है कि हम उसकी रचनाधर्मिता से संवाद करें। ..... प्रेमचन्द उस समाज में भी इतने ही समादृत और लोकप्रिय होंगे, जिसमें होरी अस्महत्या नहीं कर रहा होगा, और निर्मलाएं जलायी नहीं जा रही होंगी।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रेमचन्द : एक अध्ययन – डा0 राजेश्वर गुरु, मध्य प्रदेशीय प्र0 समिति, भोपाल, प्र0सं0 1961, पृ0 20
2. प्रेमचन्द एक विवेचन – डा0 इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र0व0 नहीं, पृ0 54
3. प्रेमचन्द, आलोचनात्मक परिचय – डा0 रामविलास शर्मा, मेंहरचन्द मुंशी राम, दिल्ली, 1952, पृ0 41
4. प्रेमचन्द और उनका युग – डा0 रामविलास शर्मा, मेंहरचन्द मुंशी राम दिल्ली, 1952, पृ0 36
5. प्रेमचन्द और उनका साहित्य – डा0 श्रीमती शीला गुप्त, साहित्य भवन प्रा0लि0, इलाहाबाद, 1972, पृ0 43
6. प्रेमचन्द और उनकी कहानी कला – डा0 सत्येंद्र, भारतीय रत्न भंडार, आगरा, प्र0स0 नहीं, पृ0 66
7. प्रेमचन्द और उनकी साहित्य साधना – डा0 पदमसिंह शर्मा, कमलेश अत्तरचन्द कपूर एंड संस, दिल्ली, प्र0व0 नहीं, पृ0 17